© 2017 IJSRSET | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099
Themed Section : Engineering and Technology

मृच्छकटिक में वर्णव्यवस्था

पूनम यादव
शोधछात्रा
संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्राचीन काल से ही हमारे यहाँ वर्णव्यवस्था विद्यमान रही है। इस वर्णव्यवस्था के मूल में सामाजिक विकास प्रमुख लक्ष्य था। वर्णव्यवस्था के अनुसार समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया है– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। चारों वर्णों के कार्य को भी निश्चित किया गया है – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को क्रमशः उस शरीर का मुख, भुजा, जंघा और चरण माना गया है। इस प्रकार आज यह स्पष्ट होता है कि वर्णव्यवस्था का जो आधुनिक स्वरूप आज प्रचलित है।

वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'वृञ् वरणे' अथवा 'वरी' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'चुनना' या 'वरण करना'। 'वर्ण और 'वरणे' शब्दों में साम्य भी है। 'वर्ण' से तात्पर्य 'वृत्ति' से है, किसी विशेष व्यवसाय के चुनने से। समाजशास्त्रीय भाषा में वर्ण या अर्थ 'वर्ग' से है, जो अपने गिने चुने हुए मुख्य व्यसाय से आबद्ध है। प्रत्येक वर्ण का समाज में विशिष्ट (प्रमुख) कार्य और स्थान है।

वर्ण शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है, जो पूर्ववैदिक युग की समाज–रचना के प्रारम्भिक स्वरूप को स्पष्ट करता है। उसमें 'वर्ण' का प्रयोग 'रंग' अथवा 'आलोक' के अर्थ के है।[1]

वर्णव्यवस्था जातिगत वर्ग तथा सामाजिक संरचना से सम्बद्ध जाति और धर्म पर ही वर्णों का निर्धारण किया गया है। वास्तव में समाज में व्यक्ति का प्रभाव और महत्त्व वर्ण के आधार पर ही सुनिश्चित हाता है।

वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत कर्म का प्रथम स्थान है तथा प्रत्येक वर्ण का अपना अलग–अलग विशिष्ट स्थान है। वर्णों का निर्धारण उनके कर्मों पर ही आधारित है। प्राचीन धर्मशास्त्रों में वर्णों की उत्पत्ति ईश्वरकृत अथवा दैवी शक्ति मानी गयी है तथा उनके विभाजन को आदरपूर्वक पवित्र एवं निर्मल माना गया है। ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में वर्ण सम्बन्धी उत्पत्ति के विवरण को स्वीकार किया गया है। इसके वर्णन के अनुसार वर्णों की उत्पत्ति विराट् पुरूष से हुई थी। उसके मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरू (जाँघ) से वैश्य तथा पद (पैर) से शूद्र उत्पन्न हुए।[2]

ब्राहतणोऽस्य मुखासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरूतदस्य यद्वैश्यः यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।।

यह उद्धरण इस बात का अवश्य प्रमाण है कि पूर्व वैदिक युग का परवर्ती समाज चार भागों में विभाजित हो चुका था तथा यह विभाजन सृष्टिकर्ता द्वारा माना गया था। यह सृष्टिकर्ता अथवा विराट् पुरूष

हजार सिर, हजार आँखों और हजार पैरों वाला था, जो भूत और भविष्य दोनों था और जिससे सृष्टि की उत्पत्ति हुई थी।[3]

सहस्त्रशीर्षा पुरूषः सहस्त्राक्षः सहस्रपात।
पुरूष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।।

अतः यह माना गया है कि ऐसे विशाल ईश्वर से चारों वर्णों की उत्पत्ति हुई और हम यह भी कह सकते हैं कि स्वयं ईश्वर ने ही वर्णों की उत्पत्ति और उनकी स्थिति निर्धारित की।

जिस प्रकार शरीर में मुँह, बाहु, जाँघ और पैर का महत्व है उसी प्रकार समाजरूपी शरीर के ब्राह्मण, राजन्य (क्षत्रिय), वैश्य और शूद्र अंग हैं। कहा जाता है कि सभी अंगों का शरीर में प्रधान स्थान प्राप्त होता है तथा किसी एक अंग के बिना शरीर की स्थिति दयनीय हो जाती है, उसी प्रकार किसी एक वर्ण के बिना समाज की स्थिति भी गम्भीर हो जाती है, क्योंकि शरीर के परिचालन में सभी अंगों का कार्य समान योग और महत्व है।

ऋग्वेद के प्रमाणों के अनुसार ब्राह्मणों की उत्पत्ति मुख से इसलिए कही गई कि उनका समस्त कार्य मुँह से सम्बन्धित था, अर्थात् शिक्षा और वेद–पाठ पढ़ना, विद्या प्रदान करना। क्षत्रियों को बाहु से इसलिए उत्पन्न माना गया कि उनका सभी कार्य देश की सुरक्षा, प्रशासन इत्यादि को सुव्यवस्थित बनाए रखना इत्यादि बाहु से आबद्ध था। बाहु शक्ति और शूरवीरता का परिचायक माना गया है और शरीर में बाहु की स्थिति प्रमुख है। वैश्यों का जाँघ से उद्भव इसलिए माना (स्वीकारा) गया है कि उनका प्रमुख कार्य समाज की आर्थिक लेन–देन की व्यवस्था को मजबूत बनाए रखना। कृषि पशुपालन इत्यादि समाज की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। जिस प्रकार हमारे शरीर में प्रत्येक अंग की अनिवार्यता महत्वपूर्ण है उसी प्रकार समाज के लिए वैश्यों की। इसी प्रकार शूद्रों की उत्पत्ति पैर से इसलिए कही गई कि अपनी सेवा के द्वारा तीनों वर्णों और समाज को गति प्रदान करते थे। जिस प्रकार शरीर के प्रत्येक अंग का अपना अलग–अलग कार्य है जैसे– पैर का प्रमुख कार्य है शरीर के ऊपर के भार को वहन करना और शरीर को गतिमान बनाये रखना। इन अवयवों के बिना शरीर गतिहीन और निस्तेज हो जाता है, अतः शरीर को इनकी अपेक्षा है। इसी प्रकार माना गया है कि चारों के बिना समाज को कोई महत्व नहीं है।

मृच्छकटिकम् एक यथार्थवादी नाटक है। मानव–जीवन एवं समाज के प्रायः सभी पक्षों का यथार्थचित्र प्रस्तुत करने के करण संस्कृत–साहित्य में इसका अपना वैशिष्ट्य है।[4]

मृच्छकटिक–काल में वर्णव्यवस्था सुदृढ़ न थी। प्रत्येक वर्ण एक जातिगत रूप को धारण कर चुका था और कहीं–कहीं पर एक जाति अनेक जातियों में विभक्त हो चुकी थी। समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र – ये चार वर्ण थे।

ब्राह्मण वश में उत्पन्न नायक चारूदत्त को समुद्री व्यापार होने के कारण सार्थवाह कहा गया है।

'मृच्छकटिक' का अध्ययन भी यह स्पष्ट संकेत प्रदान करता है कि उस समय वर्ण व्यवस्था विद्यमान थी। समाज चार वर्णों में विभाजित था, परन्तु प्रथम तीन वर्ण क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य शेष एक वर्ण व

उप जातियों में श्रेष्ठ माना जाता था। हम जहाँ तक देखते है कि प्रथम तीन वर्णों का संबंध है, उसमें से भी प्रथम वर्ण अर्थात् ब्राह्मण समाज में अधिक प्रतिष्ठित था। विशिष्ट अवसरों पर भी उन्हें भोजन हेतु आमन्त्रित किया जाता है और दान–दक्षिणा इत्यादि से विभूषित किया जाता था। ब्राह्मणों में भी सभी की स्थिति एक जैसी नहीं थी उनमें से कुछ ब्राह्मण समृद्ध थे, तथा किसी के यहाँ भोजनादि का निमन्त्रण या दक्षिणा को स्वीकार नहीं करते थे। उन ब्राह्मणों में से कुछ ऐसे भी ब्राह्मण थे, जो आर्थिक दृष्टि से कमजोर थे, अतः निमन्त्रण स्वीकृत कर भोजनादि के लिये जाया करते थे तथा दक्षिणा इत्यादि भी ग्रहण करने में संकोच नहीं करते थे। यहाँ तक ये निम्न जाति के लोगों के यहाँ भी भोजन, दक्षिणा इत्यादि ग्रहण कर लेते थे। यहाँ तक कि वेश्याओं के घर भी भोजन, दान–दक्षिणा इत्यादि प्राप्त कर लेते थे। मृच्छकटिक नाटक की प्रस्तावना में हुए नटी व सूत्रधार के वार्तालाप द्वारा उक्त सम्पूर्ण तथ्यों की हमें जानकारी प्राप्त होती है।

'मृच्छकटिक' के नवम अंक में हम देखते हैं कि चारूदत्त के अपराधी सिद्ध होने पर भी न्यायाधीश उसे राष्ट्र निष्कासन का दण्ड ही देता है।[5]

अयं हि पातकी विप्रो न बध्यो मनुस्ब्रवीत।

राष्ट्रदस्यान्तु निर्वास्यो विभवैरक्षतैः सह।।

कुछ उदण्ड राजा होते थे जो धर्मशास्त्रों के कथनों को महत्व न देकर स्वयं अपनी इच्छानुसार निर्णय देते थे। ऐसा ही राजपालक भी करता है। ऐसा ही राजापालक भी करता है। वह न्यायाधीश के निर्णय को बदल कर चारूदत्त को मृत्युदण्ड प्रदान करता है।

ब्राह्मण वर्ण के जहाँ तक कार्य का सबंध है, यह वर्ण मुख्य रूप से अध्ययन, अध्यापन, यजन–याजन दान और प्रतिग्रह ये षट्कर्म किया करता था। विद्या इस ब्राह्मण वर्ण का आभूषण[6]

विद्याविशेषालंकृतः कि कोऽपि ब्राह्मणयुवाकाम्यते? तथा विद्याध्ययन उसका परम कर्तव्य था। यह वर्ण वेद वेदांग का अध्ययन, उनके मंत्रपठन का संध्या पूजा–नादि का दैनिक कार्य सम्पन्न किया करता था यज्ञोपवीत उसका महदुपकरण होता है।[7]

'यज्ञोपवीतं हि नाम ब्राह्मणस्य महदुपकरण द्रव्यम्।''

यज्ञोपवीत का महत्वपूर्ण उपयोग का वर्णन चारूदत्त ने मृच्छकटिक के दशम अंक में अपने पुत्र रोहसेन को यज्ञोपवीत देते हुए किया है। उसके अनुसार ''यज्ञोपवीत'' यह बिना मोती का तथा सुवर्ण से न बना हुआ, ब्राह्मणों का आभूषण है, जिससे देवता और पितरों का भाग दिया जाता है।[8]

''अमौक्तिकमसौवर्णं ब्राह्मणानां विभूषणम्।

देवतानां पितृणां च भागो येन प्रदीयते।।''

चतुवर्णों में ब्राह्मणों के अतिरिक्त क्षत्रिय एवं वैश्यों का भी महत्वपूर्ण स्थान था। क्षत्रिय प्रायः धुनर्विद्याा में निपुण तथा कर्त्तव्य परायण होते थे। क्षत्रिय के अतिरिक्त वैश्यों का समाज मे उच्च स्थान था। व्यापार एवं वाणिज्य उनका प्रमुख व्यवसाय था। वे देश को अर्थ से समृद्ध करने के लिये व्यापार में संलग्न रहते थे।

व्यापारी न केवल अपने जन्म–स्थान व आस–पास के स्थानों में ही व्यापार करने जाया करते थे तथा वहाँ पर अपने व्यवसाय का व्यापार करके पुनः स्वदेश काफी बाद लौटा करते थे।[9]

किमनेक नगराभिगमनजनिताविभविस्तारो वणिजयुवा

उक्त वर्णों के अतिरिक्त चतुर्थ वर्ण के रूप में 'शूद्र' विद्यमान थे। समाज में यह वर्ण चारो वर्णों में अधम माना जाता था। शूद्र के विषय में मनुस्मृति के इस कथन का ''शूद्रंतु कारयेदास्यं क्रीतं क्रीतमेव वा। दास्यायैव हि सृष्टौऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयंभूवा।[10] उस समय अस्पृश्यता विद्यमान नहीं थी फिर भी समाज में सामाजिक भेदभाव बना हुआ था। उदाहरणार्थ :– 'मृच्छकटिक' का एक पात्र शकार का दास चेट निम्न वर्ण से है अतः उसे न तो कोई स्वतंत्रता प्राप्त है तथा वह जो कुछ कहता है उस पर भी विश्वास नहीं किया जाता है। अपने मालिक का अपराध छिपाने से इनकार करने पर उसे बन्दी बनना पड़ता है और जब वह बसन्त सेना की हत्या के संबंध में सत्य का उद्घाटन करता है, तब चाण्डाल तक भी उसके कथन का विश्वास नहीं करते।[11] 'हन्त! ईदृशो दासभवः सत्सत्यं कमपि य प्रत्यापयति।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान समय में ही नहीं उस समय भी समाज में विभिन्न वर्णों में ऊँच–नीच की भावना प्रबल थी, परन्तु परिवर्तन अवश्य हो रहे थे। चारूदत्त जैसे गुणों के ग्राहक उस समय भी विद्यमान थे जो कि जाति सम्बन्धी भेदभाव को प्रधानता न देकर मानवता को प्रथम स्थान प्रदान करते थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद – 1.73.7
2. ऋग्वेद – 10.90.12
3. ऋग्वेद – 10.90.12.1
4. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ0– 319
5. मृच्छ क0 9/39
6. मृ0क0 द्वि0अं0, पृ0–121
7. मृ0कं0 तृ0अं0, पृ0–204
8. मृ0कं0 दशम अंक – 10/18
9. मृ0क0 द्वि0अं0
10. मनुस्मृति – 8/413
11. मृच्छ0 क0 द0अं0